कृषि और पर्यावरण : समस्याएँ और समाधान

डॉ.हिमांशु पाठक

परिचय

स्वतंत्रता के पश्चात देश के आर्थिक इतिहास में दर्ज सभी उपलब्धियों में से, जिस पर हम सबसे ज्यादा गर्व का अनुभव कर सकते हैं, वह है हमारे देश के ऊपर मृत्यु की छाया की तरह मँडराने वाले दुर्भिक्ष का उन्मूलन। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अथक परिश्रम एवं वास्तविक योगदान द्वारा ही यह संभव हो सका है। नवोन्मेषी योजना निर्माण, लक्ष्यपरक कृषि अनुसंधान तथा विकासोन्मुख नीतियों के कारण आज हम आत्मनिर्भर और खाद्यान्न की दृष्टि से सुरक्षित राष्ट्र बन पाए हैं। सन 1960-61 में खाद्यान्न का उत्पादन 82 मिलियन टन था जो 2016-17 में बढ़कर 274 मिलियन टन के रिकॉर्ड स्तर तक पहुंच गया। बढ़ती जनसंख्या के बावजूद प्रति व्यक्ति अनाज की उपलब्धता में काफी वृद्धि हुई है। उत्पादन की दृष्टि से पूरे विश्व में भारत का स्थान दाल और तिलहन उत्पादन में पहला, गेहूँ, चावल और सब्जियों के उत्पादन में दूसरा, अनाज के उत्पादन में तीसरा और मोटे अनाज के उत्पादन में पाँचवां है।

1960 के दशक के मध्य में हरित क्रांति से देश को बहुत लाभ हुआ किंतु गहन कृषि विकास पर अत्यधिक बल देने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास हुआ। हरित क्रांति से उच्च उत्पादकता के कारण उत्पादन में भारी वृद्धि तो हुई किंतु इसके कई पारिस्थितिकीय और सामाजिक दुष्परिणाम सामने आए। उपज स्तर में गतिरोध की स्थिति और 1970 के दशक के बराबर की उपज को प्राप्त करने के लिए अत्यधिक पोषकतत्वों के अनिवार्यता के कारण कभी-कभी इस स्थिति को "हरित क्रांति की थकावट" के रूप में अभिहित किया जाता है। किसानों की क्षमता के अयुक्तियुक्त आकलन ने जहां प्राकृतिक संसाधनों के जरूरत से ज्यादा दोहन और कुप्रबंधन को जन्म दिया वहीं अति उत्साही लोकलुभावनवादी सरकारी प्रोत्साहनों ने इसे और अधिक विकृत कर दिया। उदाहरण के लिए, नहर के पानी, बिजली, नाइट्रोजन उर्वरक आदि पर दी जाने वाली अत्यधिक सब्सिडी के कारण किसानों ने अपने कृषिगत कार्यों में निहित पर्यावरणीय खतरों को पहचाने बिना मृदा एवं जल संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया। यही कारण है कि मृदा लवणता, जल भराव, जल स्तर में गिरावट, पानी की गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की कमी और मृदा अम्लीकरण की समस्याएँ अकसर उन क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं, जहां हरित क्रांति हुई थी। यह लेख आधुनिक गहन कृषि के कारण उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं और उनके संभावित समाधानों पर एक विमर्श प्रस्तुत करता है।

आधुनिक गहन कृषि

पारंपरिक कृषि में, किसान पौधों के लिए पोषकतत्वों के प्राकृतिक स्रोत के रूप में गोबर, गोमूत्र अपशिष्ट पुआल एवं अन्य डेयरी अपशिष्टों से निर्मित खाद का उपयोग करते थे, जिससे मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व तथा वातावरण से जैविक स्थिरीकरण के माध्यम से अवशोषित पोषक तत्व पौधों को मिल सके। खाद प्रयोग की इस परंपरागत व्यवस्था से यद्यपि कम पैदावार मिलती थी लेकिन मृदा की अंतर्निहित उत्पादकता पर कोई दबाव नहीं था।

गहन कृषि से देश में खाद्य उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। आधुनिक कृषि बड़े पैमाने पर अधिक लागत वाले निवेशों जैसे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, उन्नत बीज, सिंचाई और अधिक क्षमता वाली कृषि मशीनरी के उपयोग पर निर्भर करती है। ऐसी उच्च निवेश वाली प्रौद्योगिकियों के प्रयोग ने निस्संदेह कृषि उत्पादन में वृद्धि की है लेकिन रसायनों के अधिक मात्रा में प्रयोग के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारत के एक बड़े क्षेत्र में लगातार मृदा क्षरण के प्रमाण देखने को मिल रहे हैं, जो देश के उत्पादक संसाधन के मूल आधार को गंभीरता से प्रभावित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप भारत के खाद्य उत्पादन बढ़ाने की क्षमता एवं खाद्य सुरक्षा के प्रति खतरा पैदा हो गया है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि संसाधनों पर दबाव बढ़ा है जिसने इस मृदा क्षरण को और अधिक बढ़ावा दिया है। अतः वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण तथा पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका दुष्प्रभाव एक उभरता हुआ गंभीर विषय है जो कि वैश्विक जनसंख्या में वृद्धि तथा पारिस्थितिकी पर कृषि के दबाव का परिणाम है। कृषि और उद्योग में तकनीकी विकास किसी भी देश के विकास का साधारण मानदंड बनाया गया है। इसका

परिणाम प्राकृतिक संसाधनों के कण-कण के असीमित दोहन और इस तरह जैवमंडल के सजीव और निर्जीव घटकों के बीच सहज संतुलन में बाधा के रूप में सामने आया है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि असंतुलित परिवेश फसल उपज और उसके घटकों को प्रभावित कर रहा है। प्रदूषण के ऊंचे स्तर के कारण वायु, जल, और मृदा के स्वास्थ्य के समक्ष खतरे पैदा हो गए हैं जिनसे फसल उत्पादकता बाधित हो रही है।

गहन कृषि के पर्यावरणगत प्रभाव

गहन कृषि के कारण प्रकृति के सभी तीन महत्वपूर्ण घटक अर्थात वायु, जल और मृदा प्रदूषित हो सकते हैं। किंतु विस्तार के आधार पर इन घटकों के प्रदूषण की विशेषताएँ अलग-अलग हैं। वायु प्रदूषण का विस्तार वैश्विक है जबकि जल और मृदा प्रदूषण का विस्तार क्षेत्रीय और स्थानीय हैं। गहन कृषि से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न प्रमुख पर्यावरणीय प्रभाव संदर्भ तालिका 1 में दिए गए हैं।

तालिका -1 गहन कृषि के क्रियाकलापों के कारण प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ

क्रियाकलाप	पर्यावरणीय समस्याएँ
प्राकृतिक वनस्पतियों की कटाई	1. निवास और जैव विविधता का नुकसान 2. क्षेत्रीय जलविज्ञान और स्थानीय जलवायु में असंतुलन 3. ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन एवं वायु प्रदूषण
जुताई	1. मृदा अपरदन 2. परिवर्तित मृदा, वनस्पति एवं जीव समूह 3. मृदा बनावट में परिवर्तन 4. मृदा संघनन 5. परिवर्तित मृदा अलबीडो
सिंचाई	1. प्रदूषित व्युत्क्रमी प्रवाह 2. जलभराव एवं लवणता 3. भूमिगत जल का दूषित होना 4. मृदा अपरदन
उर्वरक	1. भूमिगत जल में नाइट्रेट एवं फास्फेट 2. सुपोषण (पानी में पादप पोषणों की भरमार की स्थिति) 3. ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 4. धातुओं का भारी जमाव 5. मृदा स्वास्थ्य में गिरावट
कीटनाशक	1. भोजन एवं दूध में कीटनाशकों के अवशेष 2. प्राकृतिक अपमार्जकों (जैसे गिद्ध, आदि) की संख्या में कमी 3. नाशकजीव प्रतिरोधिता
कृषि अवशेषों को जलाना	1. वायु प्रदूषण 2. पोषकों का नुकसान

यद्यपि खाद्य उत्पादन में वृद्धि करने का दबाव है लेकिन कृषि क्षेत्र में पर्यावरणीय ह्रास की समस्याएं बढ़ रही हैं, विशेष रूप से गहन खेती वाले क्षेत्रों में जैसे कि सिंधु-गंगा मैदानी भाग में। मिट्टी की उर्वरता में गिरावट, जल-स्तर का कम होना और सिंचाई में उपयोग होनेवाले जल की गुणवत्ता में कमी, बढ़ती लवणता और कई कीटनाशकों के प्रति कीटों में प्रतिरोधिता का विकास वर्तमान की बड़ी समस्याएँ बन गई हैं। उदाहरण के लिए, भारत के उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में जल-स्तर, 0.2 से 0.5 मीटर प्रति वर्ष की दर से घट रहा है। मृदा लवणता और जलभराव जैसी अन्य समस्याएँ सिंधु-गंगा मैदानी भाग के कई हिस्सों में पहले से फैल गई हैं। सिंधु-गंगा मैदानी भाग के क्षेत्रों में दीर्घकालिक परीक्षण से पता चला है कि कई स्थानों पर उत्पादकता में गिरावट की प्रवृत्ति आरंभ हो चुकी है। यहाँ के किसानों को उपज हेतु अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ता है जबकि वे 20-30 साल पहले उपज के लिए बहुत उर्वरक प्रयोग करते थे। पंजाब में, चावल और गेहूं में प्रयोग किए जाने वाले उर्वरक का औसत प्रयोग संस्तुत की गई मात्रा से अधिक है। इस तरह के प्रयोगों से कभी-कभी वातावरण में प्रतिक्रियाशील नाट्रोजन की सांद्रता वृद्धि होती है जिसके कारण जल और हवा प्रदूषित होती है। देश के विभिन्न भागों में किए गए दीर्घकालिक परीक्षणों से यह पता चला कि नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों के प्रयोग के बावजूद भी कई स्थानों पर उत्पादकता में गिरावट हुई है। उदाहरण के लिए, पंजाब में, चावल की खेती में 170-250 कि.ग्रा. नाइट्रोजन उर्वरक प्रति हैक्टर का औसत प्रयोग है जो कि संस्तुत की गई मात्रा 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर से अधिक है। उसी प्रकार गेहूं में नाइट्रोजन उर्वरक की खपत 1971-72 में 90 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर से बढ़कर 1985-86 में 120 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर हुआ जो वर्तमान में 150 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक पहुंच चुका है। इस प्रकार के प्रयोग से भूमिगत जल में नाइट्रेट की सांद्रता बढ़ जाती है।

अन्य विकासात्मक गतिविधियों के कारण कृषि पर्यावरण की समस्या अधिक जटिल हो रही है। देश के विभिन्न हिस्सों में तेजी से हो रहे औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण अनुपचारित अपशिष्ट जल का उत्पादन हो रहा है जिसे अकसर नदियों, नहरों और झीलों में डाल दिया जाता है। शहरी के बाहरी क्षेत्रों में ताप विद्युत इकाई जैसे उद्योगों की स्थापना से बड़ी मात्रा में एरोसोल का उत्सर्जन होता है। ये सभी मृदा, वायु और जल प्रदूषण की समस्याओं को बढ़ा रहे हैं, जिससे कृषि-पारिस्थितिक तंत्र की संरचना और प्रक्रिया प्रभावित हो रही हैं। ग्लोबल फुटप्रिंट नेटवर्क द्वारा नवीनतम पारिस्थितिक फुटप्रिंट विश्लेषण (2005) के अनुसार, मानवता 39% से अधिक अपनी पारिस्थितिक सीमा पार कर चुकी है। एक वर्ष के दौरान मानव जाति द्वारा प्रयोग किए गए संसाधनों को पुनःउत्पादित करने के लिए अब पृथ्वी को एक वर्ष और चार महीने लगते हैं। संयुक्त राष्ट्र के समर्थन के साथ 2001 में शुरू हुआ मिलेनियम पारिस्थितिकी तंत्र आकलन (एमईए) ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि पारिस्थितिकी तंत्र की गिरावट खतरे के नए स्तर तक तेजी से पहुंच रही है। इसने कृषि, मत्स्य पालन और ऊर्जा स्रोतों से सब्सिडी हटाने की सिफारिश की है जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं तथा यह सुझाव दिया कि भू-मालिकों को संसाधनों के प्रबंधन के लिए उन तरीकों को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए जो पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं की आपूर्ति जैसे कार्बन भंडारण और ताजा पानी के उत्पादन करने में मदद करते है।

जलवायु परिवर्तन और कृषि

पिछले कुछ दशकों में, पृथ्वी के जलवायु में मानवजनित परिवर्तन वैज्ञानिक और सामाजिक चिंता का केंद्र बिंदु बन गया है। पृथ्वी के पर्यावरणीय परिवर्तनों में सबसे प्रमुख परिवर्तन हैं- कार्बनडाइऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का बढ़ता हुआ स्तर और उसके परिणामस्वरूप वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि। पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण अब वर्षा की मात्रा एवं वर्षा होने की संभावना और अधिक अनिश्चित हो गई है। कुछ स्थानों पर, जलवायु की आपात स्थितियों जैसे कि सूखा, बाढ़, अत्यधिक वर्षा और हिम गलन में वृद्धि हुई है। क्षेत्र के आधार पर समुद्र का स्तर 10-20 सेंटीमीटर बढ़ गया है। इसी प्रकार, बर्फ के आवरण में धीरे-धीरे कमी हो रही है। 19वीं शताब्दी के अंत में दर्ज किए गए वैश्विक औसत वार्षिक तापमान की अपेक्षा 20वीं सदी के अंत में वैश्विक औसत वार्षिक तापमान लगभग 0.5से 0.7डिग्री सेल्सियस अधिक है। यह अनुमान है कि अगले 100 वर्षो में वायु का औसत तापमान 1.9 - 4.6 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। अधिक बाढ़, बार-बार सूखे की स्थिति, जंगल की आग, कृषि और जलीय

उत्पादकता में कमी, समुद्र के स्तर में वृद्धि और तीव्र उष्णकटिबंधीय चक्रवातों द्वारा तटीय निवासियों के विस्थापन और मैंग्रोव वनस्पति का क्षरण एशिया में पर्यावरणीय परिवर्तनों के संभावित खतरे हैं।

कुल वैश्विक कार्बनडाइऑक्साइड जो कि सबसे महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैस है, उत्सर्जन में वैश्विक कृषि का लगभग 4 प्रतिशत का योगदान है। बलुई मिट्टी की तुलना में चिकनी मिट्टी वाली दोमट से कार्बनडाइऑक्साइड अधिक उत्पन्न होती है क्योंकि इसमें जैविक कार्बन की मात्रा अधिक होती है। बिना जुताई की गई मिट्टी की तुलना में जुताई की गई मिट्टी से अधिक कार्बन उत्सर्जित होता है। जड़ और मिट्टी के श्वसन द्वारा मिट्टी से कार्बन के विकास पर तापमान का एक महत्वपूर्ण प्रभाव है।

उष्मा अवशोषी वाली गैस के रूप में मीथेन कार्बन से लगभग 21 गुना ज्यादा प्रभावी है। कृषि से मीथेन के प्राथमिक स्रोत में पशु की पाचन प्रक्रियाएं, आर्द्र भूमियां, धान की खेती के साथ खाद भंडारण और उनका रख-रखाव शामिल है। जुगाली करने वाले पशुओं में मीथेन का उत्पादन अवायवीय स्थितियों के तहत उनके पाचन के सह-उत्पाद के रूप में होता है। खाद प्रबंधन के दौरान जब पशुओं के गोबर आदि अवायवीय परिस्थितियों में जमा होते हैं और उन्हें खेत में सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है तब भी मीथेन उत्पादन होता है।

आर्द्रभूमि चावल के खेतों में अवायवीय परिस्थितियां विकसित होती है जो मिट्टी में ऑक्सीजन के प्रवाह को सीमित करती हैं और सूक्ष्मजैविक गतिविधियां पानी-संतृप्त मृदा को ऑक्सीजन से वंचित करती है। मेथानोजेन्स नामक एक छोटे लेकिन अत्यधिक विशिष्ट बैक्टीरिया समूह की उपापचय गतिविधियों से जैवजनित मीथेन बनती हैं। उनकी गतिविधि जलमग्न स्थितियों में बढ़ जाती है। मीथेन उत्सर्जन में जल प्रबंधन प्रमुख भूमिका निभाता है; निरंतर जलमग्न दशाओं की तुलना में रूक-रूक कर सिंचाई से मीथेन उत्सर्जन दसवां भाग कम हो जाता है।

कुल नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन में 65% योगदान मृदा का है। उनके प्रमुख स्रोत हैं-मृदा की जुताई, उर्वरक और खादों का प्रयोग और जैविक पदार्थ और जीवाश्म ईधन का जलना है। कृषि के परिप्रेक्ष्य में मृदा से नाइट्रस आक्साइड का निकलना मृदा में नाइट्रोजन की कमी और नाइट्रोजन प्रयोग की कार्यदक्षता के घटने का प्रतीक है।

कृषि से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को कम करना

सभी पर्यावरणीय परिवर्तनों से कृषि उत्पादन पर जबरदस्त असर होगा और इसलिए किसी भी क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा भी प्रभावित होगी। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिदृश्य में संसाधनों की घटती पृष्ठभूमि में बढ़ती आबादी के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराना तथा पर्यावरण की क्षति को कम करना कृषि अनुसंधान का प्राथमिक कार्य है। विश्व में चल रहे भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से तथा विश्व व्यापार संगठन के परिणाम के रूप में लागू होने वाले आर्थिक सुधारों जो कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन करने के लिए भारत सहित कई देशों को मजबूर कर रहा है से यह समस्या और बढ़ सकती है।

वर्तमान भारतीय कृषि को जिन प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वे वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए हैं। इनकी पृष्ठभूमि में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन, उद्योग, परिवहन से होने वाला जल एवं वायु प्रदूषण, अजैविक उर्वरकों का प्रयोग तथा जैवविविधता की क्षति प्रमुख हैं। इन समस्याओं के कुछ संभावित समाधान इस प्रकार हैं।

1. वैकल्पिक चावल की खेती : जल प्रबंधन प्रथाओं को बदलने, विशेष रूप मध्य मौसम वातन की जगह लघु अवधि के जल निकासी का प्रयोग करने से मीथेन उत्सर्जन में भारी कमी लाई जा सकती है। गैर-मौसम के दौरान खाद बनाने या मिट्टी में खाद को मिलाने से वायुजीवी निम्नीकरण को बढ़ावा द्वारा जैविक पदार्थ का प्रबंधन एक आशाजनक तकनीक है।

2. उन्नत मृदा और पोषक प्रबंधन : उपयुक्त फसल प्रबंधन उपाय, जिससे नाइट्रोजन-उपयोग दक्षता और उपज में वृद्धि हुई है, नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने में सहायक होंगे। स्थान-विशिष्ट पोषक प्रबंधन, उर्वरक प्रयोग, उचित समय उचित प्रकार के उर्वरक कुछ ऐसे खेती के तरीके हैं जो पौधों की आवश्यकताओं के अनुसार बेहतर पोषक तत्वों उपलब्ध कराते हैं। फसल कतारों के बीच उर्वरक बैंडिंग द्वारा एवं खेत में उर्वरकों की गहराई में प्रयोग से कुल नाइट्रोजन नुकसान रोका जा सकता है तथा पौधों के नाइट्रोजन ग्रहण करने की क्षमता में सुधार होता है।

3. उन्नत खाद प्रबंधनः ढके हुए लैगून का उपयोग करते हुए बड़े पैमाने पर गहन-खेती से पशुओं के अपशिष्टों से उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। तरल खाद की अपेक्षा ठोस खाद के प्रयोग से मीथेन कम हो सकती है लेकिन यह नाइट्रस ऑक्साइड को बढ़ावा देता है। खेत में जितनी जल्दी हो सके खाद का प्रयोग करना चाहिए जिससे उत्सर्जन कम हो। कंपोस्टिंग के दौरान खाद में वायु मिश्रित होने से मीथेन कम हो सकती है लेकिन नाइट्रस ऑक्साइड में वृद्धि हो सकती है।

4. कार्बन पृथक्करणः कार्बन की मात्रा को बढ़ाकर या उसके अपघटन को कम करके मृदा में कार्बन जब्ती किया जा सकता है। मिट्टी की पीएच, मृदा जल संग्रहण, तापमान में परिवर्तन के कारण, अतिरिक्त कृषि भूमि को अलग करके और निम्नीकृत भूमि की मिट्टी में कार्बन की पुनःस्थापन द्वारा मृदा में कार्बन पृथक्करण को बढ़ाया जा सकता है। कम जुताई करके और कृषि-वन तथा जैव ईंधन फसलों के लिए अधिक से अधिक भूमि का आवंटन करके कार्बन पृथक्करण को बढ़ाया जा सकता है।

5. स्थानांतरी कृषि पर रोक लगानाः पहाड़ी क्षेत्रों और ढलान वाली भूमियों मे स्थानांतरी कृषि का प्रयोग मिट्टी के निम्नीकरण को बढ़ावा देता है। उत्तर-पूर्व पहाड़ी राज्यों, ओडिशा, बिहार और मध्यप्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में 4.37 मिलीयन हेक्टेयर क्षेत्र में स्थानांतरी खेती की जा रही है जिससे भूमि में कार्बनिक गतिविधियों के दुष्प्रभाव लक्षित होते हैं और मिट्टी का भारी मात्रा में क्षरण, पहाड़ों मे भूस्खलन एवं और मैदानी हिस्सों में भारी बाढ़ तथा गाद जमा होने की घटनाएँ होती रहती हैं। स्थानांतरी खेती का खेती चक्र 25 से 30 वर्ष से घटकर 5-6 वर्ष को गया है जिससे स्थिति और भी भयावह हो गई है।

6. कृषि अपशिष्टों का प्रबंधनः कृषि संबंधी क्रियाकलापों से पर्याप्त अवशेषों का उत्पादन होता है जिन्हें आम तौर पर अपशिष्ट माना जाता है। इन अवशेषों में गेहूं का पुआल पशुओं के भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह पशुओं के सोने के लिए बिछाने के काम में आता है और छप्पर बनाने के लिए सामग्री और घरेलू ऊर्जा के स्रोत के लिए भी उपयोग किया जाता है। शेष अवशेषों को आम तौर पर विघटित होने के लिए छोड़ दिया जाता है या कभी-कभी जला दिया जाता है। ऐसी प्रथाओं से ने केवल अवशेषों मे उपस्थित पोषक तत्वों का नुकसान होता है बल्कि इससे वायु प्रदूषण और वैश्विक तापन की वृद्धि होती हैं। सस्ते और सब्सिडी वाले अकार्बनिक उर्वरकों और मशीनरी की उपलब्धता के कारण गहन खेती सुविधाजनक हो गई है तथा इसके साथ ही घरेलू उपयोग के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की उपलब्धता के कारण इस तरह की

गतिविधियों को बढ़ावा मिला है। परिणामस्वरूप, इन अवशेषों का केवल एक छोटा अंश ही मिट्टी में मिल पाता है जिससे कई स्थानों पर मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता में गिरावट आई है।

मूल्य-संवर्धन हेतु बाजार के लिए कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण के दौरान काफी अपशिष्टों का उत्पादन भी होता है। फल, सब्जी, चीनी, कागज के प्रसंस्करण से संबंधित उद्योगों के कारण बड़ी मात्रा में अपशिष्टों का उत्पादन होता है जिनका निस्तारण अति आवश्यक है। चूंकि प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ रही है, इसलिए भविष्य में इस तरह के अपशिष्टों का उत्पादन और भी अधिक होने की संभावना है।

कृषि भूमि की संपोषिता की समस्या, कृषि अपशिष्टों के सुरक्षित निपटान की आवश्यकता और जैविक खेती में बढ़ती रुचि ने एक बार फिर अवशेषों के प्रबंधन को अपरिहार्य बना दिया है। कृषि अपशिष्टों को मृदा में मिलाने या खेत की खाद (फार्म यार्ड खाद) में बदलने के अतिरिक्त, बायोगैस बनाने के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है। यह बायोगेस एक साफ, गैर प्रदूषणकारी, धुआं और राख रहित ईंधन है, जिसमें 55-70% तक मीथेन है जो ज्वलनशील है। इतना ही नहीं, बायोगैस प्लांट से प्राप्त पके घोल को सुखाने के बाद उसका उपयोग कृषि भूमि के लिए कार्बनिक खाद के रूप में किया जाता है।

निष्कर्ष

जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार और बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य मांगों की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए स्थिर आर्थिक विकास तथा गरीबी कम करना विकासशील देशों में सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता बनी हुई है। कृषि अनुसंधान और विकास संबंधी नीतियां और उनका क्रियान्वयन इन्ही उद्देश्यों पर केंद्रित होना चाहिए। वास्तव में खाद्य उत्पादन को बढ़ाना अब कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं रह गया है बल्कि, निर्णय की प्रक्रिया में उत्पादन का तरीका और उत्पादन के विभिन्न स्तरों से जुड़े हुए आर्थिक,

सामाजिक और पर्यावरणीय लागत ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं। इन तत्वों पर स्पष्ट विचार और उनके संभावित बेहतर तालमेल के लिए लागत-लाभ अनुपात के रूप में पर्यावरणीय मूल्य को समझना आवश्यक है। पर्यावरणीय क्षति के विस्तार की अनिश्चितता, उसकी गैर-व्यापारिक प्रकृत्ति तथा उसका कोई अंकित मूल्य न होने के कारण यह चुनौतीपूर्ण है। पर्यावरणीय लागतों के आकलन हेतु पर्यावरणीय क्षति के प्रत्यक्ष और परोक्ष कारकों की जानकारी के साथ-साथ राष्ट्रीय कृषि उत्पादन, रोजगार और राष्ट्रीय पर्यावरणीय परिवेश पर सकारात्मक कृषिगत कार्यकलापों के प्रभाव की समझ जरूरी है। कृषि के संदर्भ मे पर्यावरण की समग्र दृष्टि आवश्यक है और यह अंतर-विषयक होनी चाहिए। प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दों पर स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए। वर्तमान में जटिल पर्यावरणीय समस्याओं के विश्लेषण के लिए पर्यावरणीय प्रोटोकॉल को बनाने के लिए और लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए वैज्ञानिकों के एक बृहद बहु-विषयक समूह की आवश्यकता है।

(निदेशक, राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान
कटक, ओडिशा)